



दिरनी

चन्द्रकिरण सौनरेक्सा

सर्च - राज्य संसाधन केन्द्र, हरियाणा

चन्द्रकिरण सौनरेक्सा

श्रीमती चन्द्रकिरण सौनरेक्सा का जन्म 19 अक्टूबर, 1920 में नौशेरा, पेशावर में हुआ। इनकी पढ़ाई—लिखाई घर पर ही हुई। ये हिन्दी के अलावा बंगला, उर्दू और गुजराती भाषा पर भी अधिकार रखती थीं। इनकी कहानियों में मध्यवर्ग की घुटन में छटपटाती और अभिजात वर्ग के झूठे आग्रहों में फँसी स्त्रियों के वास्तविक एवं सच्चे चित्र उभरे हैं। इन कहानियों में स्त्रियों के छोटे—बड़े विद्रोहों की कथा और उनके न पहचाने गए मानवीय सार की छवियाँ मौजूद हैं। इनकी रचनाओं में आधुनिक युग की कशमकश, विषमताओं, भेदभाव, असन्तोष, प्रेम—घृणा और आशा—निराशाओं के बीच एक स्त्री—व्यक्तित्व झलकता है। आज अनेक जागरूक महिला लेखिकाओं की परम्परा के सूत्र इनकी रचनाओं में मिलते हैं। चन्द्रकिरण सौनरेक्सा की रचनाओं की पहचान आजादी के बाद ही हो सकी। हिन्दी के परम्परावादी आलोचक उनके साथ न्याय नहीं कर सके। रोहतक के गाँव की ठेठ देहाती लड़की उनकी कहानी में कहती है, 'जहाँ पाप बसता है, वहाँ पर्दा होता है'। ढोंग पर टिके परम्परावादी समाज पर यह टिप्पणी जिस उन्मुक्त देहाती लड़की ने की उसे कैसे मिटाया जाता है, यह कहानी में भी मौजूद है और हमारे समाज में भी। यह लड़की हिन्दू भी हो सकती है और मुसलमान भी। हमारे नवपाठक इस लड़की की स्वाभाविक मानवीयता को पहचानें। उसकी खुशी और अभिव्यक्ति को हम कैसे बचायें? अपनी लड़कियों को घुटन में रखकर, उनकी स्वाभाविक इच्छाएँ कुचलकर, उन्हें पर्दे में बाँधकर क्या हम एक शिक्षित समाज बना सकते हैं? नवपाठक इस पर भी विचार करें। सोच—विचार का यह मौका उन्हें 'हिरनी' कहानी दे रही है। साक्षरता अभियानों में युवा लड़कियों ने अक्षर सैनिका के रूप में बड़े पैमाने पर योगदान दिया है, यह भी ध्यान रखने की बात है।

रचनाएँ— 'आदमखोर', 'दीमक', 'मर्द', 'सुबह की कमज़ोरी', 'इकलाई' आदि लेखिका की अन्य प्रभावपूर्ण रचनाएँ हैं।

कैरेन हेडॉक

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के न्यूयार्क शहर में 20 फरवरी 1954 को जन्म। स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयार्क, बफेलो से बायोफिज़िक्स विषय में पी.एच.डी.। प्रिन्सटन विश्वविद्यालय, हार्वर्ड विश्वविद्यालय, माऊंट साइनाई स्कूल ऑफ मेडिकल रिसर्च आदि में शोध कार्य। सन 1985 से भारत में। पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ में अस्थाई रूप से कुछ समय बायोफिज़िक्स पढ़ाया। पढ़ाई के साथ—साथ चित्रकारिता सीखी। बच्चों, बड़ों और नवसाक्षरों की दर्जनों पुस्तकों एवं विभिन्न पत्रिकाओं के लिए चित्रकारिता। महिला संगठनों और सभी तरह के जनान्दोलनों में शिक्षाकर्मी, वैज्ञानिक, चित्रकार और सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में सक्रिय। 1987 में नागार्जुन लोक सम्मान समारोह पर विदिशा में सार्वजनिक प्रदर्शनी।

सम्प्रति: मुख्यतः शिक्षा में नवाचार और स्कूली शिक्षा में व्यापक सुधार के लिए होमी भाबा साइंस एजुकेशन सेंटर, मुम्बई और यूनेस्को के प्रोजेक्टों में सहयोगी। समय—समय पर राष्ट्रीय और स्थानीय स्तर की शिक्षक प्रशिक्षण कार्यशालाओं में मुख्य भूमिका के रूप में हिस्सेदारी।

हिरनी

(कहानी)

चन्द्रकिरण सौनरेक्सा

प्रथम संस्करण : फरवरी, 2002, 1000 प्रतियाँ

परामर्श : शुभा

सम्पादन : अविनाश सैनी

सम्पादकीय सहकर्मी : नरेश प्रेरणा

प्रूफ संशोधन : मनीषा

प्रोडक्शन : अविनाश सैनी, सुभाष

चित्रांकन एवं आवरण: कैरेन हेडॉक

मुद्रक : आचार्य प्रिंटिंग प्रैस, गोहाना रोड, रोहतक।

प्रकाशक : 'सर्च' — राज्य संसाधन केन्द्र, हरियाणा।

Hirni : A Story by Chandrakiran Saunreksa

सम्पर्क :

'सर्च' — राज्य संसाधन केन्द्र, हरियाणा

42/29, चाणक्यपुरी, नज़दीक शीला सिनेमा, सोनीपत रोड, रोहतक—124001

फोन : 01262—44916, 57371

दो शब्द

इस कहानी को छापते हुए हमें बेहद खुशी हो रही है। बात यह है कि इसमें देश के बँटवारे से पहले के हरियाणा क्षेत्र के एक गाँव की बात कही गई है। कहानी में रोहतक ज़िले के गाँव की मिली-जुली आबादी के आपसी रिश्तों की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। साथ ही इसमें गाँव की लड़की की निश्छलता, चंचलता, सहजता, स्वतन्त्रता एवं ज़िन्दादिली भी दिखाई गई है जो 'शहरी सभ्यता' वाले परिवार में जाकर ख़त्म हो जाती है। यही नहीं, वह लड़की इतने बंधनों में बाँध दी जाती है कि वह बहुत ही 'उदास' हो जाती है जिसे यह 'सभ्य समाज' 'समझदार' कहता है।

यह उदास कर देने वाली सभ्यता आज हमारे गाँवों में भी फैल रही है। इसका प्रदूषण इतना ज़्यादा है कि बड़े पैमाने पर लड़कियों की भ्रूण हत्याएँ की जा रही हैं। ऐसे में ज़रूरत है कि लड़कियों की स्वतन्त्रता और ज़िन्दादिली को शहर व गाँव, सभी समाजों में स्वीकारा जाये। आधुनिक और पुराने समय के अच्छे मूल्यों को मिलाकर एक बेहतर समाज बनाया जाए जिसमें इन्सान की सादगी बनी रह सके। उम्मीद है कि पाठक हमारी इस बात से अवश्य सहमत होंगे और अपनी भावनाएँ हमारे साथ बाँटेंगे।

प्रमोद गौरी

निदेशक,

'सर्च' – राज्य संसाधन केन्द्र, हरियाणा।



हिरनी

चन्द्रकिरण सौनरेक्सा

वह काली इटैलियन का बारीक लाल गोटवाला चूड़ीदार पायजामा और हरे फूलों वाला गुलाबी रंग का लम्बा कुरता पहने हुई थी। गोट लगी कुसुम्भी (लाल) रंग की ओढ़नी के दोनों छोर बड़ी लापरवाही से कंधे के ऊपर पड़े थे। अपनी लम्बी मज़बूत माँसल कलाई से मूसली उठाये वह दबादब हल्दी कूट रही थी। उसकी कलाई में फँसी मोटी हरी चूड़ियाँ और चाँदी के कड़े व पछेलियाँ बार-बार छनक रही थीं। उन्हीं की ताल पर वह गा रही थी –

“हुलर हुलर दुध गेरे मेरी माय आज मेरा मुन्नीलाल जीवेगा कि नाय।”

बड़ा लोच था उसके स्वर में। इस गवाँरू गीत की वह पंक्ति उस तीखी दुपहरी में भी कानों में मिश्री की बूँदों के समान पड़ रही थी। कुछ देर मैं छज्जे की आड़ में खड़ी सुनती रही। न उसने कूटना बन्द किया और न वह गीत की पंक्ति, “हुलर हुलर।”

धूप में पैर बहुत जलने लगे, तो मैं लौटने को हुई। तभी

पीछे से भाभी ने आकर ज़ोर से कहा – “खुदैजा, अरी देख, यह रहीं हमारी बीबीजी । चोरी–चोरी तेरा गीत सुन रही थीं ।”

उसने तुरन्त मूसली छोड़कर ऊपर नज़र उठाई और हँस पड़ी । फिर हाथ माथे पर रख कर बोली – “सलाम बीबी जी ! बड़े भाग जो आज तेरे दरसन हो गये ।”

मैं झेंप गयी । पिछवाड़े वाले मकान में नये पड़ोसियों को आये पन्द्रह दिन हो गये होंगे । भाभी से कई बार खुदैजा का ज़िक्र सुना । यह जानकर भी कि वह मुझसे मिलना–बोलना चाहती है, मैं कभी उससे परिचय करने नहीं आई थी । मैं सोचती थी, उस ठेठ गँवार छोकरी से मैं किस विषय पर क्या बातें करूँगी ? अपनी झेंप मिटाने को मैं जल्दी से बोली– “भाभी, तुम्हारा गला तो बड़ा मीठा है । अपना गीत ज़रा फिर से तो गाओ ।”

“के बीबीजी, मेरा गला ! भला तुम तो बाजे पर गाने वाली ठहरीं, मेरा गीत भावेगा”, उसने उत्तर दिया । उसके बोलने में तकल्लुफ़ नहीं, हार्दिकता थी ।

“नहीं नहीं, तुम गाओपूरा गाओ”, मैंने ज़ोर दिया । बिना दोबारा इसरार कराये वह गाने लगी, उसी धीमी,

तकल्लुफ़ – शिष्टाचार, हार्दिकता – अपनापन,
इसरार – आग्रह

मीठी आवाज़ में —

“हुलर हुलर दुध गेरे मेरी माय।
आज मेरा मुन्नीलाल जीवेगा कि नाय।।
इस सासू की नज़र बुरी है, मेरी माय।
आज मेरा मुन्नीलाल जीवेगा कि नाय।।”

मुझे लगा कि वह स्वर दबाकर गा रही है।



“भाभी पूरा गला खोलकर गाओ”, मैंने अनुरोध किया।

उसने कुटी हल्दी को छलनी में उलटते हुए नीचे आँगन की ओर उँगली दिखा कर कहा — “फुफ्फी लड़ेगी !”

भाभी ने कहा — “मरने दे फुफ्फी को। बीबीजी, खुदैजा नाचती भी बहुत अच्छा है। ओ खुदैजा, ज़रा नाच तो सही।”

वह थोड़ा शरमा गई। ओढ़नी मुँह में दबाकर हँसने लगी।

“अच्छा भाभी ! तुम्हें नाचना भी आता है। तब तो ज़रूर नाचकर दिखाओ,” भाभी की शह पाकर मैंने भी कहा।

परन्तु वह नाचेगी, ऐसी मुझे ज़रा भी आशा नहीं थी। भला शहरों में जब हम पढ़ी-लिखी लड़कियों के आगे कोई बार- बार



हारमोनियम—तबला रखता है, कई—कई बार इसरार करता है, तब पहले तो हम लोग नज़ाकत से गाना न आने की दलीलें पेश करती हैं। इस पर जब वे लोग प्रमाण देते हैं कि आपने अमुक के जन्म—दिवस पर और फ़लों की शादी में अमुक गाना गाया था, तब गला ख़राब होने का बहाना किया जाता है। जब देखते हैं कि किसी तरह पीछा नहीं छूटेगा, तब कहीं ख़ाँस—ख़खारकर एक आधी गत बजाई और बाजा परे सरकाकर कहा —“देखिए, कहीं आता भी है। आप फ़िजूल ही पीछे पड़े हुए हैं।” और बस यों हमारा गाना ख़त्म हो जाता है।

“खुदैजा नाच दे न। अच्छा ! बीबीजी की बात भी नहीं मानती ?” भाभी ने कहा — “ले, तो मैं जाती हूँ।”

वह हड़बड़ाकर उठ बैठी— “न न, जावे मत। तुझे अल्ला पाक की क़सम सरसुती ! ले, मैं नाँच दूँगी। पर बीबीजी के पसन्द आवेगा मेरा नाच ?”

उसके पैर के कड़े—छड़े उसकी माँसल पिंडली और टखनों से चिपटे हुए थे। फिर भी गिनती में कई होने से आपस में खनक कर झनक उठे। ओढ़नी सिर पर ले, तनिक सा घूँघट निकाल कर वह खड़ी हो गई। फिर मुझे देखकर हँस पड़ी, बोली — “नाचूँ ?”

“हाँ, हाँ !”

“के गाऊँ, सरसुती ?”

“कुछ भी गा ले ! वही गा – लटक रहती बबुआ.....”

उसने गाया –

“लटक रहती बबुआ तोरे बँगले में,
जो मैं होती बागों की कोयल,
कूक रहती, बबुआ तोरे बँगले में।”

किसी शास्त्र के अन्तर्गत उसका नाच नहीं था। न कथक, न कथकली, न मणिपुरी, न उड़ीसी और न भरतनाट्यम् ! बाहुओं के संचालन में कोई गहराई भी न थी। पर उस सीधेपन में एक लय थी, गति थी.....तेज़ और प्रवाहमयी.....जीवन से भरपूर। अस्थायी के मोड़ पर नाचती हुई, वह दो फुट ऊपर उछल जाती और फिर धरती पर पाँव लगते ही थिरकने लगती। क्या मजाल, जो ज़रा पंजा रुकता हो। साढ़े पाँच फुट लम्बी, भरी देह की उस युवती का गठन एकदम गिन्नी गोल्ड की डली जैसा था – लाल रंग का ऐसा सोना, जिसमें कयामत की लोच हो।

गीत पूरा हुआ और वह नाच बन्द कर लम्बी-लम्बी साँस लेने लगी।

“शाबाश, भाभी !” मैंने उत्साह से कहा – “सचमुच बहुत अच्छा नाचती हो।”



सच्ची ! तुम्हें मेरा नाच अच्छा लगा !” उसकी बिल्लौरी शीशे सी आँखों में उत्साह छलक पड़ा। भोलेपन से उसने पूछा — “और नाचूँ ?”

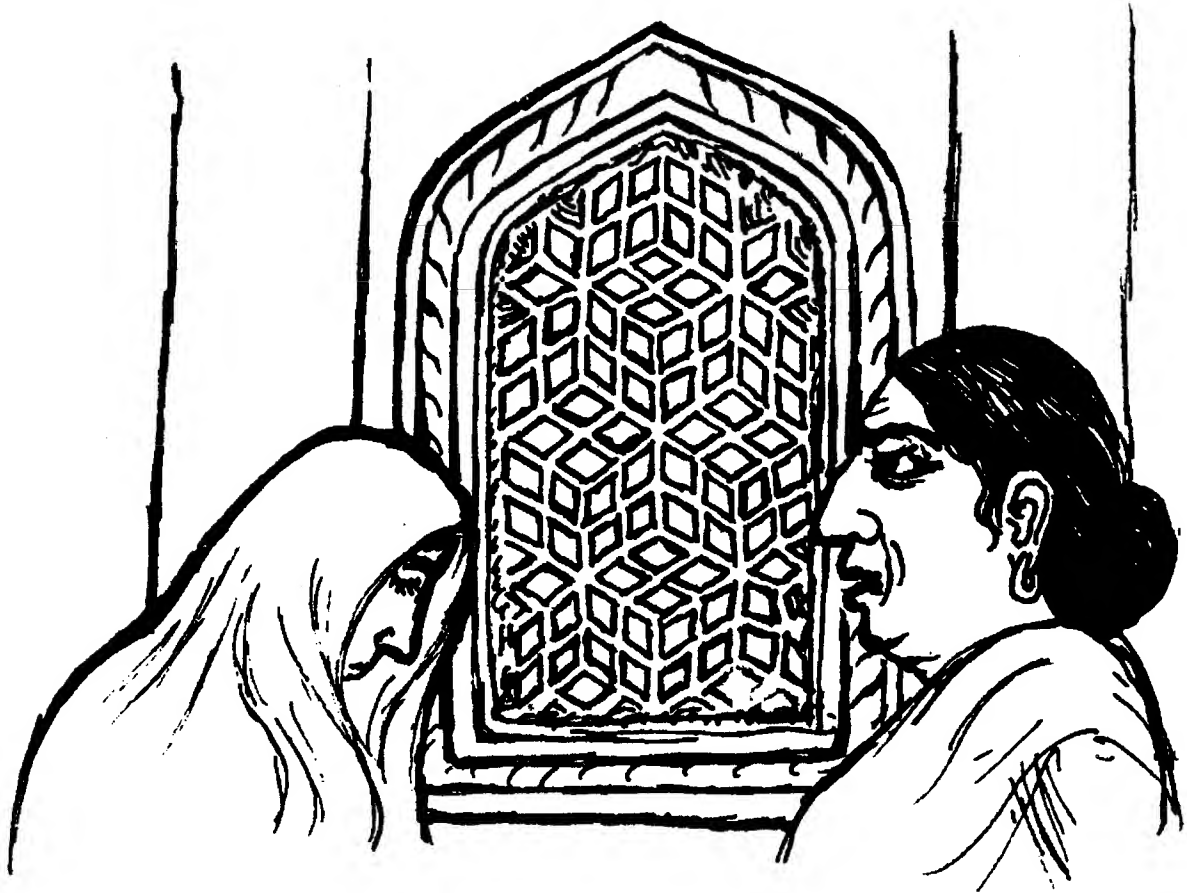
“हाँ—हाँ।” छज्जे की आड़ में भी मेरे पाँव जले जा रहे थे। फिर भी नीचे जाने का मन नहीं था।

उसने दुपट्टे से मुँह का पसीना पोंछा और पैर से तुमका लिया ही था कि नीचे से किसी ने धीमी पर तीखी क्रोधभरी आवाज़ में कहा —

“ओ घोड़ी ! कूदना बन्द कर दे ! शफ़ीक का अब्बा आ गया है।”

खुदैजा के पाँव रुक गए। जैसे किसी तेज़ चाल से घूमते हुए लट्टू पर कोई अचानक हाथ रख दे। मुँह पर उदासी की छाया—सी आ गई। किन्तु भाभी से दृष्टि मिलते ही वह मुसकरा पड़ी और बोली — “देखा, मचने लगा न शोर ! फुफ्फ़ी का बस चले, तो मुझे बक्से में बन्द करके रखे।” फिर होठों में ही किसी गीत की कड़ी गुनगुनाती हुई वह ओढ़नी के पल्ले से मुँह पर हवा करने लगी।

नीचे से सीढ़ियाँ चढ़ती हुई, उसकी सास कहती आ रही थी— “खुदैजा, तूने तो सारी हया—शरम घोलकर पी डाली ! अरी, तू क्या नटनी की धी है ? कंजरियों की तरह हर वक्त



गाती रहती है, बेहया कहीं की.....!!!"

खुदैजा चमक पड़ी। गुस्से से उसके चेहरे का गेहुँआ रंग एकदम गहरा सिन्दूरी हो उठा।

"बस, फुफ्फी, अपनी जवान बन्द रखे ! नटनी होगी तू, तेरी धी !! कंजरी-वंजरी बनाएगी, तो देख ले मैं अपनी-तेरी जान एक कर दूँगी.....!"

"या परवरदिगार !" फूफी ऊपर आ चुकी थी। आसमान

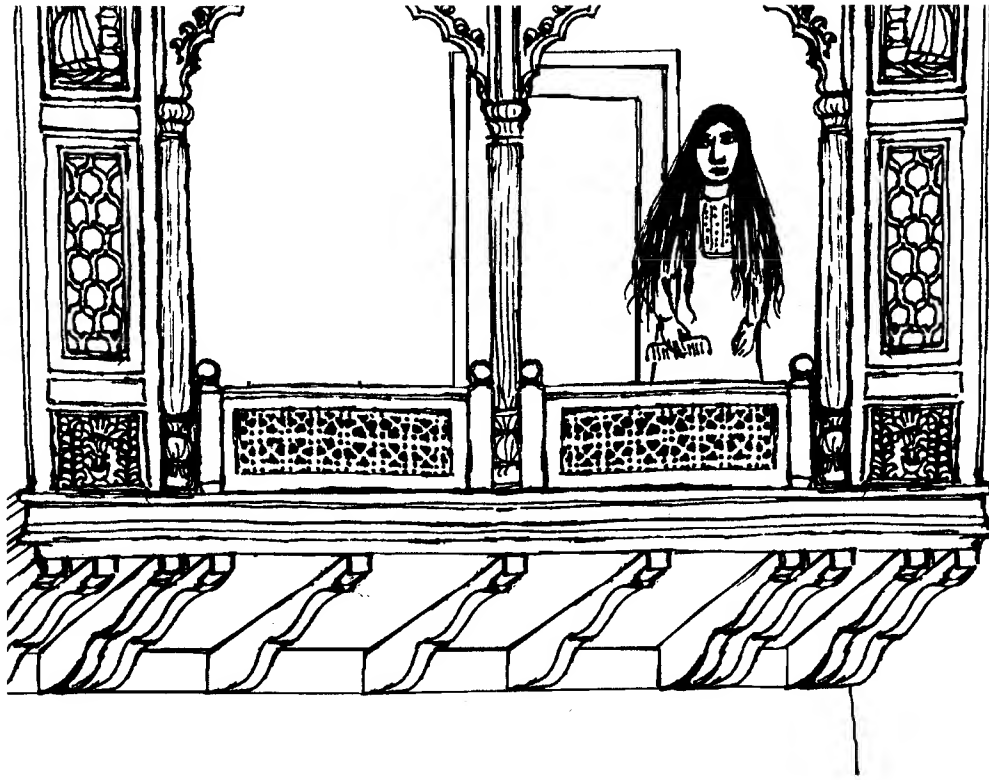


की तरफ़ दोनों हाथ उठा कर बोली— “अल्लाह का कहर पड़े तेरे ऊपर.....! खुदा करे, तेरे भाई की मैयत निकले !तूने हमारे खानदान की नाक काट ली। मेरे शफ़ीक के लिए तू ही धरी थी। हाय अल्लाह, कैसी जुबानदराज़ है। जी चाहता है जुबान खींच लूँ इसकी

..... और फूफी तब नाक के स्वर में रो रो कर अल्लाह को पुकारने लगी। मैं भाभी का हाथ पकड़ कर उन्हें खींचती हुई नीचे ले आई। तिरस्कार से मैंने कहा — “यही है तुम्हारी सहेली !”

भाभी ने चिढ़ कर कहा— “सहेली का क्या कसूर बीबीजी? तुम्हें ही अगर कोई जेलखाने में बन्द करके बाप—भाइयों को गालियाँ दे, तो कहाँ तक सुनोगी ? वह तो रोहतक के किसी ठेठ गाँव की लड़की है। शहरों की — मुँह में राम बगल में छुरी वाली सभ्यता तो जानती नहीं ! उसे तुम “तू” कहोगी, तो “तू” सुनोगी भी ! वैसे दिल की इतनी अच्छी है कि ज़रा सा किसी का दुख नहीं देख सकती। गरुर मिज़ाज तो वह जानती तक नहीं।” — और भाभी कुछ अप्रसन्न सी हो कर बाहर चली गई।

जुबानदराज़ — ज़्यादा जुबान चलाने वाली



दूसरे दिन सिर धो कर बाल सुखाने मैं पिछवाड़े के छज्जे पर गई। खुदैजा को देखने का लाभ भी इसका एक कारण था। वह अपनी देहरी पर बैठी कुछ सी रही थी। साथ ही कोई गीत भी गुनगुनाती जा रही थी। मैंने हल्के से खाँसा। आहत पाकर उसने सिर ऊँचा किया। मुझे देखते ही उसका मुँह प्रसन्नता से गुलाब की भाँति खिल उठा। फौरन हाथ माथे पर रखकर बोली – “सलाम बीबीजी ! राजी तो हो ?”

“सलाम !” मैंने जवाब देकर पूछा, “क्या सी रही हो?”

“के बताऊँ बीबीजी ! बिचारी फुफ्फी के हाथों में तो खुजली हो रही है। अल्लाह मारा ऐसा रोग है कि आदमी अपने

हाथ से खा भी न सके। उसका पैजामा फट गया है, उसी में टाँके लगा रही हूँ।”

मुझे कल की घटना याद हो आई। धीरे से पूछा — “मेल हो गया सास से ?”

खुदैजा हँसी। फिर बोली — “सास—बहू की कं लड़ाई बीबीजी ! पर मने कोई गाली दे है, तो बस मैं तो ऊपर से तले तक बल उटूँ हूँ।”

“पर भाभी, इन लोगों से तुम्हारी पटती नहीं। तुम्हारे बाप ने तुम्हें क्यों शहर में ब्याह दिया ?”

खुदैजा का स्वर कुछ बोझिल हो गया, बोली—“बीबीजी, मेरा बाप तो गरीब आदमी है। अब्बा (ससुर) ने मैं कहीं गाँव में देख ली थी, सो मेरे चाचा से माँग ली। वो सीधा आदमी, बातों में आ गया। उसे के खबर थी कि शहरों में घर जेलखानों जैसे होवें हैं !”

“तुम्हारे गाँव में क्या परदा नहीं होता था ?” मैंने पूछा।

“बीबीजी, परदा तो वहाँ करें, जहाँ पाप बसता हो। गाँव में सब भैन—बेटियाँ समझे हैं। परदा करें तो फिर खेत—क्यार का काम कैसे चले ?”

“तभी तुम्हें इतने गीत याद हैं,” मैंने मज़ाक किया—
“घर—घर गाती हुई घूमती होगी।”



और यह सुनते ही वह किसी सुखद स्मृति से पुलक उठी — “बीबीजी, सावन के महीने मैं हम सब छोरियाँ नीम में झूला डालतीं, आधी रात तक पींगें बढ़ातीं और गातीं—नाचतीं। ब्याह—शादी में रात—रात भर चाँदनी में नाच—गाना होता। बहू—बेटी गातीं और बड़े—बूढ़े चौपाल में सुना करते।”

“बहुएँ भी परदा नहीं करती थीं ?”

“अरे के परदा !” उसने ओढ़नी से मुँह ढँककर कहा — “ऐसे, बस परदा हो गया। कोई बोलचाल का परदा होता है ? घूँघट मार लिया और गाती रहीं।”

“अच्छा !” मैं चुप हो गई। सच है, हैड कान्सटेबिल के बेटे की बहू पर बड़ा तरस आ रहा था। बेचारी बड़ी बुरी फँसी थी।

“बीबीजी, एक गीत गाऊँ?”

“गाओ,” मैंने खुश होकर कहा।

और सब कुछ भूल, अपने स्वर को पंचम तक पहुँचाकर उसने गाया —

“कोटे ऊपर कोठरी, जिसमें तपे तन्दूर,

गिन-गिन लाऊँ रोटियाँ, मेरा खानेवाला दूर री,
मेरी बाली का बाला जोबनवा, बटवा गूँथन दे.....!

“अरी खुदैजा” नीचे से उसकी सास ने पुकारा—
“कम्बख्त ! आने दे तेरे यार को, उसी से तुझे ठीक कराऊँगी.....कल शफ़ीक दौरे से लौट आवे, तब तेरी मरम्मत कराऊँगी।”

और फिर दोनों सास-बहुओं में ठन गई.....।

दूसरे दिन मैं छत पर न गई। परन्तु तीसरे पहर भाभी ने नीचे आ कर बताया कि खुदैजा छत पर बैठी रो रही है। उसके पति ने रात उसे लकड़ी से मारा था। सुनकर मैं अपने-आप को रोक न सकी। ऊपर जाकर देखा, खुदैजा छत पर खपरैल तले खटोले पर पड़ी, रो रही थी।

“भाभी !” मैंने धीरे से उसे पुकारा।

वह चमक कर उठ बैठी। मुझे देखकर अपनी आँसू भरी आँखों से ही हँस पड़ी— “बड़ी उमर बीबीजी, मैं तो तमे याद कर रही थी, सलाम !”

सलाम का उत्तर दे, मैंने पूछा — “रात क्या गुज़री ?”

“गुजरी के !” उसने तपे हुए स्वर में कहा — “तेरा भाई आया था। फूफी ने जाने क्या सिखा दिया। आते ही उसने लाठी पकड़ ली”, कहते-कहते उसका स्वर ठण्डा हो गया।

साथ ही हँसी का पुट भी आ गया। “बीबीजी, बोल्या ना चाल्या, अल्ला कसम, दो लकड़ी जमा दीं”, और उसने अपनी पीठ दिखाई, जो रीढ़ के पास छिल गई थी।

सहानुभूति से मैंने कहा— “राम—राम, बड़ा कसाई है !”

हँस पड़ी खुदैजा। बोली — “बीबीजी, के बताऊँ.....मनै दुनिया की शरम खा गई कि लोग कहेंगे, खसम को मारा। नहीं तो लकड़ी समेत टाँगों में ऐसे दबा लेती — चूँ करके रह जाता। सारी सिपाहीगिरी लिकड़ जाती।” और उसने अपने पुष्ट हाथों से मरोड़ देने का अभिनय किया।

खुदैजा की बातें छोड़कर जाने की इच्छा न होती थी। जिस निष्कपट सरल भाव से वह बातें कर रही थी, उनके प्रभाव से मन मस्तिष्क पर एक नशा सा छा जाता था। आधी रात के सन्नाटे में भी उसके गले की मिठास कानों में गूँजती थी। काश, अगर उसे कुछ दिन संगीत सिखाया जाता ! अचानक मुझे ध्यान आया कि कहीं मुझसे बातें करने में वह गाना न सुनाने लगे, तो फिर उस पर मार पड़े। इसलिए, “अभी आती हूँ” कहकर मैं झटपट नीचे उतर गई।

आते—आते सुना कि वह पुकार कर कह रही थी—
“अल्ला की कसम बीबीजी, जल्दी आइयो ! जरा अपना बाजा भी उठा लाइयो। मैं भी देखूँ, कैसे बजे है।”

कई दिनों से मेरी भाभी बीमार थीं। छोटी भतीजी कुसुम भी अचानक सर्दी खा गई और उसे भी तेज़ बुखार हो गया। पास-पड़ोस से स्त्रियाँ उन्हें देखने-पूछने आती रहती थीं। घर का सारा काम मेरे ऊपर था। इसी से सैर करने जाना तो दूर, छत पर जाना भी नहीं हुआ। खुदैजा ने कई बार अपने नन्हे देवर को भेज कर बुलवाया। कहा कि मैं तनिक देर को छत पर हो जाऊँ। पर इच्छा होने पर भी जा न सकी।

चिराग जले उसकी सास बुरका ओढ़कर छोटे लड़के को साथ लेकर आई। लड़के द्वारा पहले पुछवाया कि घर में

कोई मर्द तो नहीं। तब जाकर बेचारी कमरे में घुसीं।

“कैसी तबीयत है बहू ?”

“अब तो ज़रा ठीक हूँ”, भाभी ने कहा— “आइए, बीबीजी, ज़रा कुर्सी दे जाना।”

“सच मानो बहू,



खुदैजा पर तो तुमने जादू कर दिया है।” फूफी कुर्सी पर बैठकर बोलीं — “जब से सुना है, मछली सी तड़फ रही है। वह मुर्दार तो बुरका उठाये चली आ रही थी, मुश्किलों से रोका।तुम जानो बहू, हम लोगों में हिन्दुओं की तरह चादर बगल में दबाई और घर-घर घूमने चल दिये वाली बात तो होती नहीं। जो ऐसा करती हैं, वे बदनाम हो जाती हैं। खैर, तुमसे तो अपनों जैसा मेल हो गया है। रात को लाऊँगी उसे भी।”

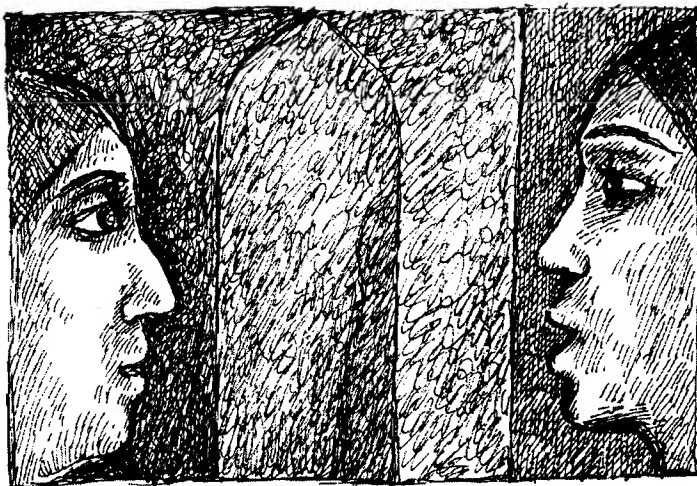
“फूफीजी, जो बड़े-बड़े अमीर-उमरा होते हैं, उनकी लड़कियाँ तो हमारी ही तरह बाहर आती-जाती हैं।” भाभी दबे स्वर में बोली।

“तुफ़ उन लोगों पर ! वह मुसलमानी क्या जिसके पैर का नाखून भी किसी ग़ैर मर्द ने देख लिया। शहरी तहज़ीब-क्रायदा तो यही है, नीची क़ौमों और ग़ँवारों की बात छोड़ दो।”

आगे बहस फ़िजूल थी। भाभी ने दूसरी बातें छोड़ दीं।

रात को दस बजे खुदैजा आई। साथ में फूफी, दोनों देवर और ननदें भी थीं। आते ही भाभी के गले से लिपट गई, फिर मेरे से। कुसुम को तो छोड़ती ही न थी — “अरे मेरे मुन्नीलाल तुझे किस सौकण (सौत) की नजर लग गई ! मेरे कुलसुम ! ...क्यों ऐ सरसुती, तूके छोरी भी बीमार कर दी ?”

“अरी
खुदैजा ! धीरे
बोल।” फूफी दबे
स्वर में गुर्गई —
कुलसुम का
अब्बा बैठक में
सो रहा है।”



“के फुफ्फी !” खुदैजा ने झनक कर कहा, “तेरी धीरे—धीरे
ने तो जान खा डाली। इब के हाँडी में मुँह करके बोलूँ ?”
“तौबा !” फूफी खून का सा घूँट पीकर रह गई।

खुदैजा को पढ़ने का शौक सवार हुआ था। उर्दू का
कायदा मँगाकर देवर से पढ़ने लगी। छत पर होती, तो मुझे
बुलाकर पूछती। परन्तु अक्षर उसे याद न रहते। अलिफ़—बे
की अपेक्षा गाने की तर्ज से जल्दी याद हो जाती थीं। फूफी
अगर इत्तफ़ाक से अपने किसी रिश्तेदार के यहाँ चली जाती,
तो फिर छत पर गाने—नाचने का तूफ़ान उठा देती। चाहे फिर
शाम को लड़ाई—झगड़े और मार—पीट की ही नौबत क्यों न आए।

वर्णमाला उसे याद नहीं हुई। इतनी दूर से पढ़ाई हो
भी नहीं सकती थी। फिर उसे घर का काफ़ी काम भी रहता।

उसे मोटी-ताज़ी देखकर फूफी और उनकी नाजुक शहराती लड़कियाँ तो कुछ करके न देती थीं। और मुझे भी अपनी पढ़ाई-लिखाई व गृहस्थी का काम रहता था। फिर मैं तो कुछ सामाजिक और राजनैतिक कार्यों में भी हिस्सा लेती थी। शहर में एक जुलूस निकलने वाला था। मैं वहीं जा रही थी।

“बीबीजी, कहाँ चली ?” उसने छत से पुकारा।

“जुलूस में !” मैं जल्दी से बोली – “आज बड़ा भारी जुलूस निकलेगा।”

“हाय, बीबीजी ! मैं क्योंकर निकलूँ इस जेलखाने से !” उसके स्वर में तड़प थी।

“अच्छा सलाम !” मैं हाथ उठाकर चल पड़ी। पर मन में खुदैजा का वह स्वर कचोटें भर रहा था – “मैं क्योंकर निकलूँ इस जेलखाने से.....!”

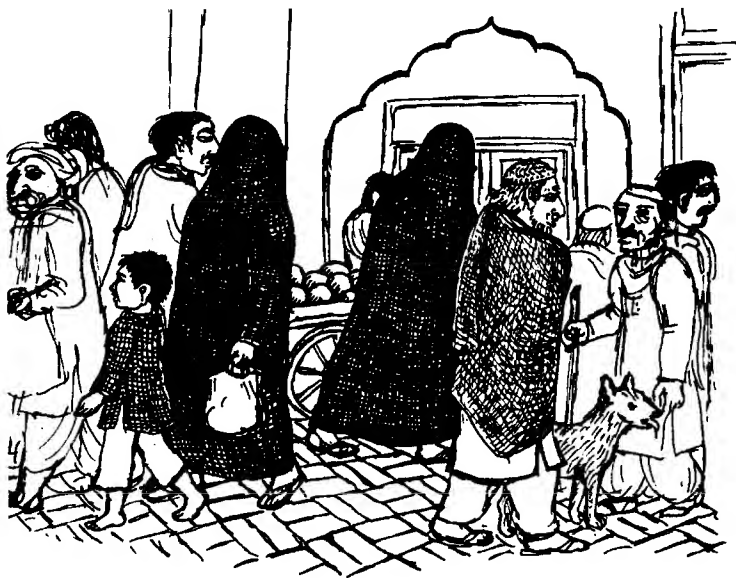
दस बजे जुलूस और मीटिंग समाप्त होने पर मैं घर लौटी, तो सुना पिछवाड़े बड़ा गुलगपाड़ा मच रहा था। भाभी ने द्वार खोल कर कहा – “बीबीजी आज न जाने खुदैजा पर क्या बीतेगी ! फूफी अपने मामू के घर गई थी। वह मेरे नन्हे को चार पैसों का लालच देकर उसके साथ चुपके से जुलूस देखने चली गई।”

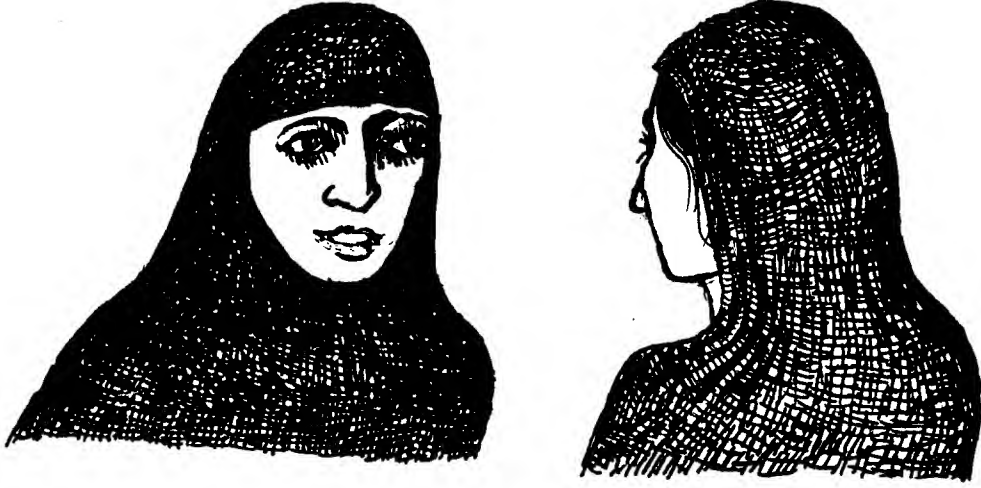
भाभी घबराहट में और ज़्यादा कुछ नहीं कह पाई।

मैं भी डर गई। हम दोनों छत पर कान लगाये सुनती रहीं। उसके ससुर बार-बार कह रहे थे, “आज मेरी पगड़ी इसने पैरों तले रौंद डाली.....इस पड़ोस में आकर यह एकदम बिगड़ गई है.....। कल ही यह मकान छोड़ दूँगा। इस बार तो दोहरी ड्योढ़ी का मकान लेना पड़ेगा।”

दो दिन बाद पिछवाड़े का मकान खाली हो गया। खुदैजा रो-रो कर बिदा हुई हमसे। पालकी में बैठी भी ऊँचे स्वर में रो रही थी।

खुदैजा की कोई ख़बर न लगी। चार- पाँच साल निकल गये। अब मेरे पास भी एक नन्ही बच्ची थी..... मैं माँ थी। घूमना-फिरना कम हो गया था। बन्धनवश नहीं, गृहस्थी और बच्ची की देखभाल की वजह से। फिर भी इस बार थोड़ी फुरसत निकाल कर देहली घूमने आई थी। लाल क़िले भी गयी। शाही हमाम में





कुछ बुरकेवालियाँ दिखाई दीं।

“बीबीजी !” अकस्मात् धीरे से उनमें से एक ने आकर मेरा कंधा छुआ।

मैंने आश्चर्य से देखा, खुदैजा थी! — लम्बी, पीली, गालों की हड्डियाँ उभरी हुई, आँखों में गड़ढ़े पड़े हुए — खुदैजा ही थी।

“अरे भाभी तुम, वाह!” मैंने उसका हाथ पकड़ लिया।

“राजी रही बीबीजी ! अच्छा, शादी हो गई ? मुबारिक!” उसने फुसफुसाकर कहा।

सिर्फ पहचान करने—कराने को उसने बुरका ऊपर उठा दिया था। उसे फिर डाल लिया। हालाँकि उस समय वहाँ कोई मर्द न था। खुदैजा के इस व्यवहार पर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। स्वच्छन्द (आज़ाद ख़्याल) हिरनी अब खूँटे से बँधी बकरी थी।

“वाह, अब तो तुम एकदम बन्द गोभी हो गई, भाभी !”

“हमेशा ही बेवकूफ़ थोड़ी बनी रहूंगी” उसने धीमे से उत्तर दिया — “अब तो अक्ल आ गई है।”

“अच्छा, अक्ल आ गई है ? अब तो बड़ी उर्दूदाँ बन गई हो। हमें तो भई नहीं आई अक्ल। उसी तरह बेलगाम घूमती हूँ...”

उसने जाली में से एक बार देखा और पलकें झुका लीं। उसकी साथिनें बाहर पहुँच चुकी थीं। नन्हे ने, जो अब बारह-तेरह साल का हो गया था, नकीब की तरह पुकारा — “भाभी !”

और खुदैजा उम्रकैदी की तरह मुड़-मुड़ कर पीछे देखती हुई चली गई।

उर्दूदाँ — विद्वान, नकीब — भाट

